गुप्त एजेंडों से सबक

रोहित धनकर

सार्वजनिक शिक्षा व्यवस्था लंबे समय से निशाने पर रही है। इसे ठप्प, खर्चीली व कभी न सुधरने वाली बताया जाता रहा है। शिक्षा का अधिकार कानून (आरटीई) इस व्यवस्था में सुधार के लिए बनाया गया था। अतः स्वाभाविक है कि जो लोग सार्वजनिक शिक्षा व्यवस्था पर हमला कर रहे हैं, उनके निशाने पर यह कानून भी होगा। सार्वजनिक शिक्षा व्यवस्था तथा शिक्षा का अधिकार कानून में वाकई समस्याएं तो हैं और उन्हें ठीक किए जाने की जरूरत भी है। अतः ऐसे तरीके खोजने की जरूरत है कि इस व्यवस्था से बेहतर शैक्षिक परिणाम मिल सकें।

फिर भी वे सभी हमले जो निजी स्कूलों, उनके समर्थकों तथा नीजीकरण करने पर आमादा लॉबी की ओर से किए जा रहे हैं, न्याय संगत नहीं है और आक्रमकता के साथ जो समाधान सुझाए जा रहे हैं वे हमें और गहरे दलदल में धकेलने वाले हैं।

असल कहानी

इस झूठ को पूरी ताकत के साथ दोहताराते हुए फैलाया जा रहा है कि तथा-कथित कम लागत वाले निजी स्कूलों में सीखने का स्तर ज्यादा बेहतर है। कुछ अध्ययन हैं जो दावा करते हैं कि निजी स्कूल सार्वजनिक स्कूलों से बेहतर प्रदर्शन करते हैं। जबकि अन्य अध्ययनों का दावा है कि बच्चों के परिवार तथा सामाजिक आर्थिक पृष्ठभूमि को समायोजित कर लेने के बाद आंकड़ों में कोई बड़ा फर्क नहीं है। अमिता चुडगार और एलिजाबेथ क्विन का कहना है कि उनके पास, ''यह दावा करने के पर्याप्त प्रमाण हैं कि भारत में निजी स्कूलों के बच्चे सार्वजनिक स्कूलों के बच्चों से बेहतर परिणाम हासिल करते हैं... और बेहतर आंकड़ों की जरूरत है'' ("Relationship between Private Schooling and Achievement: Results from Rural and Urban India", Economics of Education Review, 2012)। कम शुल्क वाले निजी स्कूल बेहतर शिक्षा देते हैं, इस दावे को स्थापित करने के मकसद से कराए गए कई अध्ययनों के बावजूद इस दावे के समर्थन में भरोसेमंद साक्ष्य नहीं हैं। यद्यपि, इस बात के साक्ष्य जरूर हैं कि ''निजी स्कूलों में निम्न जातियों के छात्र कम हैं'' (Sangeeta Goyal and Priyanka Pandey, "How do Government and Private Schools Differ", EPW, 2012), जिसका अर्थ है कि वे कम समावेशी हैं। अतः निजी स्कूलों में बेहतर शिक्षण की बात को बार -बार दोहराया जाना आधारहीन है।

जब अध्ययन के आधार पर यह साबित करना कठिन हो गया कि निजी स्कूलों में बच्चे बेहतर सीखते हैं, तब इस हमले ने शैक्षिक परिणामों पर आने वाली प्रति इकाई लागत का नए शस्त्र के रूप में आविष्कार किया। शैक्षिक परिणामों को लेकर हुए अधिकतर शोध प्रायः पूरी गहराई में शिक्षा का समग्र अर्थ समझने में नाकाम रहते हैं और आर्थिक उद्देश्यों के लिए इसे पठन, लेखन व गणन जैसे 3 कौशलों तक सीमित कर देते हैं। शिक्षा में सब कुछ गणना में तब्दील किया जा सकता है इस मिथ्या-विश्वास से यह नया दावा पैदा हुआ है कि 'प्राप्त होने वाले परिणामों की प्रति इकाई लागत' निजी स्कूलों में कम है। इसका मतलब हुआ कि निजी स्कूलों के शैक्षिक परिणाम भले ही सार्वजनिक स्कूलों से बेहतर नहीं हैं किन्तु निजी स्कूलों की लागत काफी कम है।

यह दलील पूरी तरह अप्रामाणिक है और शिक्षा की बहुत कम समझ को प्रकट करती है। निजी स्कूलों की उद्धृत लागत, के लिए अव्वल तो, आंकड़ों का कोई भरोसेमंद स्रोत नहीं है और दूसरे, वे दो तरह की प्रच्छन्न लागतों की अवहेलना करते हैं जो परिवार और देश के हिस्से में आती हैं।

प्रायः निजी स्कूलों में शिक्षण की लागत को प्रति बच्चा शुल्क के बराबर माना जाता है। जो कि दरअसल गलत है क्योंकि स्कूल ड्रेस, किताबें, स्टेशनरी एवं परिवहन, आदि जैसी सभी चीजों की लागत स्कूल के एकाधिकार में होती हैं, उन्हें इसमें शामिल नहीं किया गया है। कभी-कभी निजी स्कूल उत्सवों, पिकनिक, भ्रमण सरीखे खास अवसरों तथा परियोजनाओं के लिए अतिरिक्त धनराशि की मांग करते हैं। तथा वे प्रायः बच्चों के लिए ट्यूशन की सिफारिश करते हैं। इस लागत में इनमें से किसी को भी नहीं गिना जाता। हालांकि परिवार इस बोझ को उठाता है और ये चीज़ें उल्लेखनीय रूप से निजी स्कूलों की आय में इजाफ़ा करती हैं।

शिक्षक की स्थिति

दूसरी बात है कि कम लागत वाले निजी स्कूल प्रायः अपर्याप्त संसाधनों के साथ संचालित होते हैं। शिक्षकों को विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा अकुशल श्रमिकों के लिए निर्धारित न्यूनतम मजदूरी से भी कम भुगतान किया जाता है। यह समाज में शिक्षक की प्रतिष्ठा पर तथा शिक्षा व्यवस्था में शिक्षक के ज्ञान पर विध्वंसकारी असर डालता है और स्कूल शोषण स्थल बन जाते हैं। बच्चे यह सब कुछ देखते हैं और आत्मकेंद्रित, स्पर्धा आधारित रवैया अपना लेते हैं और सोचना शुरू कर देते हैं कि नैतिकता व्यावसायिक सफलता की राह में बाधा है। अतः राष्ट्र, शिक्षक की हैसियत व पेशेवर ज्ञान में कमी के तौर पर इसे भुगतता है तथा अपने नागरिकों के एक हिस्से को शोषित होने के लिए छोड़ देता है व उसके भावी नागरिकों में एक अस्वस्थ प्रवृत्ति पैदा होने की संभावना बनी रहती है।

निश्चय ही, कोई यह दलील दे सकता है कि सार्वजनिक शिक्षा व्यवस्था बच्चों में प्रवृत्ति विकसित करने के लिहाल से बहुत बेहतर नहीं है। किन्तु, इसका प्रबंधन ठीक तरह से किया जाए तो सार्वजनिक शिक्षा व्यवस्था को सिद्धांतः बेहतर बनाय जा सकता है। जबकि निजी प्रणाली के डीएनए में ही यह है कि उसे शुल्क से मुनाफा बनाना है। अतः इस लिहाज से कम लागत वाले निजी स्कूलों का बेहतर होना नामुमकिन है और यह बात सैद्धांतिक तौर पर भी असंभव है। अतः शिक्षण की तुलनात्मक लागत कम होने का दावा भी खोटा है।

उक्त से जुड़ी एक और कहानी : स्कूलों का बंद होना

उपरोक्त दोनों अप्रमाणिक दलीलों के साथ, एक नया झूठ फैलाया जा रहा है कि शिक्षा का अधिकार कानून लागू होने के कारण कम लागत वाले निजी स्कूल बंद हो रहे हैं। एक बेहतर स्कूल का संचालन करने हेतु शिक्षा का अधिकार कानून में बुनियादी ढांचा, प्रति शिक्षक बच्चे, शिक्षक की योग्यताएं तथा शिक्षक के वेतन आदि के संबंध में न्यूनतम मानक तय किए गए हैं। हर कक्षा के लिए एक कमरा, शौचालय तथा सुरक्षा के लिए चारदीवारी की शर्त को बमुश्किल ही अनावश्यक मांग कहा जाएगा। ना ही प्रशिक्षित शिक्षक रखने की शर्त लगाने व राज्य द्वारा न्यूनतम वेतन तय करने को ही अनुचित कहा जाएगा। यदि ऐसे स्कूल जिनके पास कमरा नहीं है, प्रशिक्षित शिक्षक नहीं हैं, शौचालय व पेयजल की सुविधाएं नहीं हैं तथा जो अपने शिक्षकों को न्यूनतम वेतन तक नहीं देते, बंद हो जाते हैं, तो फिर इसका दोषारोपण शिक्षा का अधिकार कानून के मत्थे क्यों मंढ़ा जाना चाहिए? दरहकीकत उन्हें संचालित होने का कोई हक ही नहीं है। क्या हम अक्षम संचालन के नाम पर प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों के बंद हो जाने को सही ठहराएंगे और झोलाछाप डॉक्टरों को अनुमति देंगे? यदि नहीं, तो फिर हमें इन स्कूलों को क्यों स्वीकार करना चाहिए? इसके अतिरिक्त यह दावा, कि शिक्षा का अधिकार कानून के कारण निजी स्कूल बंद हो रहे हैं, आधारहीन है। हाल ही में अज़ीम प्रेमजी फाउंडेशन ने सात राज्यों तथा एक केंद्र शासित प्रदेश के 69 जिलों में एक अध्ययन कराया (इस अध्ययन की रिपोर्ट का सारांश 'हकीकत उजागर करने की एक कोशिश' शीर्षक से शिक्षा विमर्श के इस अंक में दिया गया है) और पाया कि इन जिलों में केवल पांच स्कूल ही शिक्षा का अधिकार कानून का पालन न कर पाने के कारण बंद हुए हैं तथा 7,156 स्कूलों को इसकी पालना के लिए अब तक नोटिस दिया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि स्कूल बंद होने की यह अफवाह फैलाने के लिए आंकड़ों का झूठा व निरर्थक इस्तेमाल किया जा रहा है।

गलत उपाय सुझाना

सार्वजनिक शिक्षा व्यवस्था का शैक्षणिक स्तर कम रहने के संबंध में सुझाए गए उपाय निजी क्षेत्र को प्रोत्साहन देने के लिए हैं। सीधे शब्दों में कहें, तो इसका मतलब होगा सार्वजनिक धन को निजी मुनाफाखोरों को मुहैया कराना। चाहे यह वाउचरों के जरिए किया जाए या शिक्षा का अधिकार कानून के प्रावधानों में उनके लिए छूट देकर। वाउचरों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के टिकट के तौर पर देखा जाता है क्योंकि अभिभावक अपने बच्चों के लिए पसंद के निजी स्कूल का चयन कर सकते हैं। किन्तु पूरी दुनिया में कहीं भी इस बात के प्रमाण नहीं मिलते हैं कि वाउचरों की वजह से बच्चों का सीखना बेहतर हुआ हो। असल में यह इस बात की मांग है कि बाजार को स्कूलों का नियंत्रण करने दिया जाए। बाजार भी न्यायप्रिय भगवान नहीं है, यह बड़ी पूंजी का समर्थन करता है और स्पर्धा से गुणवत्ता बेहतर होती है यह एक मिथक है। अपने यहां शिक्षकों का प्रशिक्षण पूरी तरह से निजी कॉलेजों के हाथ में है और हम जानते हैं कि इसने शिक्षक-शिक्षा को लगभग बर्बाद कर दिया है और सुधार की तमाम कोशिशें अब तक नाकाम रही हैं।

वाउचर के समर्थक भूल जाते हैं कि चुनने की आजादी के लिए सूचना व जानकारी आधारित निर्णय लेने की जरूरत होती है। यह तभी संभव है जब व्यवस्था न्यायपूर्ण हो और उसमें इसकी गुंजाइश मौजूद हो। लेकिन व्यवस्था न्यायपूर्ण नहीं है। गरीबों के पास स्कूल संबंधी पर्याप्त जानकारी नहीं होती और जो होती हैं वह भरोसेमंद एवं विश्वनीय तरीके से उपलब्ध नहीं होती। उनके निर्णय मिथ्या प्रचार द्वारा प्रभावित किए जा सकते हैं और ऐसा किया भी जा रहा है।

ये जोर-शोर से फैलाई जाने वाली अफवाहें उनका सच नहीं हैं बल्कि खराब प्रदर्शन और उसके परिणामस्वरूप व्यवस्था के प्रति उपजा असंतोष उनका सच है। शिक्षा का अधिकार कानून को कुशलता व निष्पक्षता के साथ लागू नहीं किया जा रहा है। इसको लेकर किए जा रहे प्रयास आधे-अधूरे हैं। सरकारों ने इसे कमजोर कर दिया है और उनकी दिलचस्पी निजी स्कूलों से इसकी अनुपालना कराने में नहीं है। इसकी रचना गरीबों को बेहतर स्कूल मुहैया कराने के लिए की गई थी। किन्तु उन्होंने इससे बचने का रास्ता निकाल लिया है। हमारे देश में लगभग हर कानून के साथ इसी तरह का बर्ताव किया जाता है। दहेज विरोधी कानून, घरेलू हिंसा तथा दलितों पर अत्याचार के विरुद्ध कानूनों को भी कुशलता तथा निष्पक्षता से लागू नहीं किया जा रहा। इससे उन कानूनों को रद्द करने अथवा कमजोर करने का तर्क सिद्ध नहीं हो जाता। शिक्षा की गुणवत्ता के मुद्दे को शिक्षा का अधिकार कानून के तहत आसानी से हल किया जा सकता है। यह माना गया था कि चूंकि राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा के इतर पाठ्यचर्या का विस्तार करने के लिए राज्य सरकारें जिम्मेदार हैं और प्रशासनिक व वित्तीय जिम्मेदारी राज्य सरकारों के दायरे में आने वाले मुद्दे हैं अतः वे इन मुद्दों पर बेहतर दिशानिर्देश तैयार कर सकेंगी। लेकिन वे चुनौतियों से मुकाबला करने में नाकाम रहीं। इसलिए शैक्षणिक मानदंडों को सुनिश्चित करने के लिए शायद कुछ धाराएं जोड़े जाने की जरूरत है।

यह दोष क्रियान्वयन का है न कि कानून का। डॉ. अम्बेडकर ने संविधान अपनाए जाने के समय टिप्पणी की थी, ''कोई संविधान कितना भी अच्छा हो, लेकिन जिन लोगों पर इसे लागू करने की जिम्मेदारी है वे अगर बुरे हैं तो इसका खराब होना तय है।'' जो बात संविधान पर लागू होती है, वह इसके तहत बने कानूनों पर भी लागू होती है। कानून में बदलाव इसे लागू करने वाले बुरे लोगों में सुधार नहीं लाने वाला। जरूरत एक ऐसे सक्रिय नागरिक समाज की है, जो उन्हें अदालत ले जाए और इसे ठीक से लागू करने के लिए जनसमर्थन जुटाए, न कि इसे रद्द कर देने की सलाह दे।

सार्वजनिक शिक्षा व्यवस्था तथा शिक्षा का अधिकार कानून के विरुद्ध चलाया जाने वाला निंदा अभियान उस उत्कृष्ट उदाहरण की तरह है जिसमें किसी कुत्ते को मारने की नियत से बदनाम कर दिया जाता है ताकि घर की चौकीदारी उनकी पसंद के भेड़िए को सौंपी जा सके। ◆

लेखक परिचयः अजीम प्रेमजी विश्वविद्यालय में प्रोफेसर एवं अकादमिक विकास के निदेशक हैं और दिगन्तर, जयपुर के संस्थापक सदस्य एवं अकादमिक सलाहकार हैं।

भाषान्तर : मनोज कुमार झा

(यह लेख 'द हिन्दु' से साभार लिया गया है।)